कुषाण
(The Kushanas)

मौर्योत्तरकाल में भारत आनेवाली विदेशी जातियों में सबसे प्रमुख कुषाण ही थे। इन्होंने भारत के एक बड़े भाग पर लंबे समय तक शासन किया। कुषाण-शासन ने भारतीय इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति को विशेष रूप से प्रभावित किया।

2.10. कुषाणों की राष्ट्रीयता *(The Nationality of the Kushanas)*

चीनी इतिहास से कुषाणों की राष्ट्रीयता के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। कुषाण मध्य एशिया में निवास करनेवाली **यू-ची** जाति की एक शाखा थे। चीनी इतिहासकार **सू-मा-चीन** के अनुसार, दूसरी शताब्दी ई० पू० में यह जाति पश्चिमी चीन में निवास करती थी। **कुई-शुआंग** राज्य इनके अधिकार में था। लगभग 165 ई० पू० में **यू-ची** कबीले को पड़ोसी कबीले **हिंग-नू** के आक्रमण का सामना करना पड़ा। इस संघर्ष में यू-ची राजा मारा गया। बाध्य होकर यू-ची अपनी विधवा रानी के नेतृत्व में पश्चिम की तरफ बढ़े। **वू-सुन** के प्रदेश पर अधिकार करते हुए वे सरदरिया तक जा पहुँचे तथा वहाँ से शकों को भागने पर मजबूर कर दिया। यहाँ भी वे स्थायी रूप से नहीं रह सके। अपने पुराने दुश्मनों के आक्रमण से बचने के लिए वे ताहिया पहुँचे तथा वहाँ अपना अधिकार जमाया। सोग्दियाना और बैक्ट्रिया भी उनके अधीन आ गए। अब उन्होंने अपनी राजधानी **कीन-ची (कीन-शी)** में स्थापित की। चीनी ग्रंथों **हान शू** *(Annals of the First Han Dynasty)* तथा **हाउ-हान-शू** *(Annals of the Second Han Dynasty)* में 206 ई० पू० से 220 ई० तक कुषाणों का इतिहास मिलता है। इसके अनुसार सोग्दियाना पहुँचने के पूर्व ही **यू-ची** की एक शाखा—**छोटी यू-ची** (Little Yue-tchi), प्रमुख शाखा से अलग होकर तिब्बत की तरफ चली गई थी। बची हुई पाँच शाखाओं—**कुई-शुआंग** या **कुषाण, हीउ-मी, शुआंग्मी, सितुन** और **तुमी**—को उनके एक सरदार **(यवगू)**, **क्यू-ज्यु-कियो** या कुजुल कदफिसस ने **कुई शुआंग** अथवा कुषाण-समुदाय की अध्यक्षता में संगठित किया तथा स्वयं उनका सम्राट् **(वांग)** बन गया।

कुषाण-शक्ति का विस्तार (The growth of the Kushana power)—भारत में कुषाणों के दो राजवंशों ने शासन किया—**कदफिसस-ग्रुप** एवं **कनिष्क-ग्रुप**। कदफिसस-ग्रुप ने भारत में कुषाण-राज्य की स्थापना की और कनिष्क-ग्रुप ने इस राज्य का विस्तार किया।

2.10(a). कदफिसस-ग्रुप

कुजुल कदफिसस—भारत में कुषाण-राज्य की स्थापना का श्रेय कुजुल कदफिसस या कदफिसस प्रथम को दिया जाता है। मध्य एशिया में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के पश्चात वह

भारत की तरफ बढ़ा। उसने अपनी सत्ता काबुल और गांधार में स्थापित की। उसके सिक्के बड़ी संख्या में तक्षशिला (सिरकप) से प्राप्त हुए हैं। उसके सिक्कों पर एक तरफ अंतिम यवन-शासक हर्मियस की आकृति मिलती है। इससे अंदाज लगता है कि पहले उसने यूनानियों की अधीनता स्वीकार की होगी। पह्लवों से भी उसने मित्रता कायम की; परंतु गोंडोफर्निस की मृत्यु के पश्चात उत्तर-पश्चिम में वह स्वतंत्र शासक बन बैठा। अपने सिक्कों में वह अपने-आपको **महाराजाधिराज** कहता है। उसके सिक्कों पर रोमन प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि विम कदफिसस ने अपने पिता की भारत विजय में सहायता की। संभवतः उसी ने गांधार और तक्षशिला पर भी विजय प्राप्त की। कुजुल ने लगभग 15-65 ई० के मध्य शासन किया। उसके सिक्कों पर उत्कीर्ण 'सचधर्मतिष्ठ' अभिलेख के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि वह बौद्धधर्म अथवा शैवधर्म में भक्ति रखता था। उसकी मृत्यु अस्सी वर्ष की उम्र में हुई। भारत में कुषाण वंश की सत्ता का संस्थापक कुजुल कदफिसस ही था। उसने बैक्ट्रिया से गांधार-तक्षशिला तक कुषाण सत्ता की स्थापना की।

विम कदफिसस—65 ई० में कुजुल की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र विम कदफिसस या कदफिसस द्वितीय कुषाणों का राजा बना। इसके समय में भारत में कुषाण-राज्य विस्तृत हुआ तथा इसे स्थायित्व भी प्राप्त हुआ। सिंधु नदी पार कर इसने तक्षशिला और पंजाब पर अधिकार किया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुजुल कदफिसस के समय में ही तक्षशिला कुषाणों के हाथों से निकल गया था। अतः विम को दुबारा इस पर अधिकार करना पड़ा। उसने गांधार पर भी अपनी सत्ता सुदृढ़ की तथा मथुरा तक अपनी शक्ति का विस्तार किया। उसके साम्राज्य की सीमा बहुत अधिक विस्तृत थी। इसमें भारत के अतिरिक्त मध्य एशिया भी सम्मिलित था। प्रो० बैजनाथ पुरी के अनुसार विम कदफिसस का साम्राज्य पूर्व में बनारस से लेकर पश्चिमोत्तर में पार्थिया की सीमा तक विस्तृत था। अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, बुखारा और रूसी तुर्किस्तान के भाग भी उसके अधीन थे। उसके सिक्के बेग्राम, पेशावर, तक्षशिला, मथुरा, गोरखपुर, वाराणसी, इंदौर से पाए गए हैं। इससे अंदाज लगता है कि उसका प्रभाव इन क्षेत्रों में था, लेकिन सिर्फ सिक्कों की प्राप्ति के आधार पर इन सभी क्षेत्रों को उसके साम्राज्य का भाग मान लेना उचित नहीं है। कदफिसस द्वितीय ने बड़ी मात्रा में सोने और ताँबे के सिक्के चलाए। इनपर खुदे लेखों से ज्ञात होता है कि उसने अपने शौर्य और पराक्रम को प्रदर्शित करने के लिए बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण कीं, जैसे—**महाराज, राजाधिराज, महीश्वर, सर्वलोकेश्वर** इत्यादि। सिक्कों से उसकी धार्मिक अभिरुचि भी परिलक्षित होती है। उसकी भक्ति शैवधर्म में थी। सैनिक अभियानों के अतिरिक्त विम कदफिसस का समय व्यापार-वाणिज्य, धर्म, कला, मुद्रा आदि के विकास के लिए भी उल्लेखनीय है। चूँकि इस समय तक कुषाण साम्राज्य की सीमाएँ उस समय की तीन महत्त्वपूर्ण साम्राज्यों से जुड़ी हुई थी तथा प्रमुख व्यापारिक मार्ग कुषाण साम्राज्य के नियंत्रण में ही थे, इससे विदेशों के साथ, खासकर रोमन-साम्राज्य के साथ, व्यापार की काफी प्रगति हुई। इस व्यापार से कुषाणों को काफी आर्थिक लाभ हुए। उन्हें भारी मात्रा में रोमन-सोना प्राप्त होने लगा जिसका उपयोग मुद्रा के रूप में किया गया। विम कदफिसस ने ताँबे के अतिरिक्त सोने के सिक्के भी काफी संख्या में ढलवाए।

2.10(b). कनिष्क-ग्रुप : कनिष्क प्रथम *(Kanishka I)*

कदफिसस द्वितीय ने 65-78 ई० के मध्य शासन किया। इसके पश्चात सत्ता कनिष्क-ग्रुप के शासकों के हाथों में आई। कदफिसस द्वितीय या विम कदफिसस के तुरंत बाद कनिष्क शासक बना या नहीं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। तक्षशिला से मिले एक अभिलेख में सोटर मेगस नामक एक शासक का उल्लेख मिलता है। उसके कुछ सिक्के भी पाए गए हैं। इस शासक की पहचान निश्चित नहीं है। संभवतः विम कदफिसस के शासन के उत्तरार्द्ध में अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात उसके किसी गवर्नर ने स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली अथवा शासक बनने का दावा पेश किया। इस विद्रोह को दबा कर ही कनिष्क प्रथम शासक बना। कनिष्क संभवतः विम कदफिसस के पूर्वी भारतीय प्रांत का प्रशासक था। विम के बाद अपनी शक्ति बढ़ा कर उसने सत्ता पर अधिकार कर लिया। कनिष्क प्रथम इस शाखा का सबसे महान शासक हुआ।

वह एक साम्राज्यनिर्माता, महान योद्धा तथा कला, धर्म एवं संस्कृति का संरक्षक माना जाता है। बौद्धधर्म के इतिहास में कनिष्क को विशिष्ट स्थान दिया गया है। अशोक के ही समान कनिष्क ने भी बौद्धधर्म को राज्याश्रय दिया। उसके प्रयासों से महायान बौद्धधर्म का मध्य एशिया में प्रसार हुआ।

कनिष्क की तिथि—कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि प्राचीन भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण पेचीदगियों में एक है। समय-समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न तिथियाँ बताई गई हैं। इस समस्या के समाधान हेतु अनेक गोष्ठियाँ एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन (लंदन एवं मास्को सम्मेलन) भी किए गए हैं जिनमें उपलब्ध सामग्रियों का सहारा लेकर विद्वानों ने कनिष्क की तिथि की समस्या पर विचार-विमर्श किए हैं; तथापि मतैक्यता का सर्वथा अभाव पाया जाता है। विद्वान उसकी तिथि पहली से लेकर तीसरी शताब्दी के मध्य कहीं मानते हैं। अनेक विद्वानों का विचार है कि कनिष्क प्रथम ही **शक संवत्** (78 ई०) को प्रारंभ करनेवाला था।

फ्लीट महोदय के विचारानुसार कनिष्क कदफिसस शासकों (कुजुल एवं विम) के पहले राजा हुआ था तथा उसी ने **विक्रम संवत्** (58 ई० पू०) चलाया। इस मत का समर्थन अन्य कई विद्वानों ने भी किया है। इनमें प्रमुख कनिंघम, डॉउसन और फ्रैंक हैं। बाद में कैनेडी ने भी इस मत को मान्यता प्रदान की थी। कैनेडी का यह भी कहना था कि 58 ई० पू० में ही चौथी बौद्ध संगीति हुई थी तथा इसी अवसर पर कनिष्क ने **विक्रम संवत्** का प्रारंभ किया।

इन विद्वानों के मत अब निराधार प्रतीत होते हैं। थॉमस एवं मार्शल ने इस मत के विपक्ष में अनेक महत्त्वपूर्ण तर्क दिए हैं। अभिलेखीय प्रमाणों, सिक्कों तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि कनिष्क के राज्य में गांधार का प्रदेश भी सम्मिलित था परंतु चीनी ग्रंथों से पता चलता है कि किपिन में कुषाणों का शासन न होकर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्य में **इन-मो-फू** (Yin-mo-fu) का राज्य था। एलन महोदय का तर्क है कि "कनिष्क के सोने के सिक्के रोमन सम्राटों के सिक्कों से प्रभावित हैं। अतः कनिष्क की तिथि रोमन सम्राट टाइटस (78-81 ई०) और ट्रोजन (98-117 ई०) के पहले नहीं हो सकते।" प्रसिद्ध मुद्रा-शास्त्री एलन के इस तर्क को हम आसानी से स्वीकार कर सकते हैं।

कतिपय अन्य विद्वानों यथा मार्शल, स्टेन कोनोव, स्मिथ आदि का विचार है कि कनिष्क प्रथम 125 ई० अथवा 144 ई० में गद्दी पर बैठा तथा ईसा की दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक शासक बना रहा। ग्रिष्मान ने कनिष्क की तिथि 144-173 ई० बताई है, परंतु भारतीय विद्वान डॉ० एच० सी० रायचौधरी, डॉ० आर० सी० मजुमदार आदि इस तिथि को स्वीकार नहीं करते हैं।

डॉ० मजुमदार का कथन है कि कनिष्क प्रथम 248 ई० में गद्दी पर बैठा। उनके अनुसार कनिष्क ने एक नया संवत् चलाया जिसे **त्रैकुटक-कलचुरि-चेदि-संवत्** (Traikutaka-Kalachuri-Chedi-era) कहते हैं। विद्वान इस मत में भी अनेक कमजोरियाँ पाते हैं। प्रो० जूव्यू डुब्रील (Jouveau-Dubreuil) इस मत के कट्टर विरोधी हैं। डॉ० मजुमदार का तर्क भारतीय एवं तिब्बती परंपराओं के विपरीत है। तिब्बती परंपरा के अनुसार कनिष्क खोतान के राजा विजयीकीर्ति का समकालीन था और विजयकीर्ति 248 ई० के बहुत पहले शासक हुआ था। भारतीय परंपरा के अनुसार नागार्जुन हुविष्क के समकालीन थे। नागार्जुन सातवाहनवंशी थे, अतः प्रो० रायचौधरी के अनुसार इनकी तिथि दूसरी शताब्दी के बाद किसी प्रकार नहीं रखी जा सकती है। कनिष्क के पुरोहित संघरक्ष के ग्रंथ **मार्गभूमि सूत्र** *(Margabhumi Sutra)* का अनुवादक अन-शिह-काव (An-Shih-Kao—148-170 AD) था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कनिष्क 160 ई० के पूर्व ही हुआ था। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि कनिष्क की तिथि 248 ई० मान लें तो वासुदेव की तिथि 348 ई० होगी; परंतु इस समय तक मथुरा पर से कुषाणों का राज्य बिलकुल ही समाप्त हो चुका था। इन्हीं तर्कों के आधार पर प्रो० आर० जी० भंडारकर की राय भी हम नहीं मान सकते कि कनिष्क 278 ई० में गद्दी पर बैठा।

अन्य कई विद्वान जैसे थामस, आर० डी० बनर्जी, रैप्सन आदि कनिष्क की तिथि 78 ई० मानते हैं। तक्षशिला के चिरस्तूप में 136 तिथि खुदी हुई है जो संभवतः विक्रम संवत् की है। यह 78 या 79 ई० से मिलती है। इसी अभिलेख में कुषाण राजाओं के लिए 'देवपुत्र' की

उपाधि भी मिलती है जिसे कनिष्क एवं उसके उत्तराधिकारियों ने अपनाया था। इन तर्कों के आधार पर माना जा सकता है कि कनिष्क 78 ई० में गद्दी पर बैठा। डॉ० दिनेशचंद्र सरकार एवं प्रो० एन० एन० घोष भी इसी तिथि को मानते हैं। इनके अनुसार कनिष्क 78 ई० से लेकर 101 या 102 ई० तक शासक बना रहा। इसी मत का समर्थन प्रो० सुधाकर चट्टोपाध्याय भी करते हैं।[1]

सैनिक अभियान एवं साम्राज्य विस्तार—कनिष्ककालीन अभिलेखों, सिक्कों एवं साहित्यिक सामग्रियों से कनिष्क के सैनिक अभियानों एवं साम्राज्य-विस्तार के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। वह एक पराक्रमी सैनिक तथा महान विजेता था। उनके जीवन का अधिकांश भाग युद्ध में ही व्यतीत हुआ तथा भारत एवं मध्य एशिया में अनेक महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त कर उसने कुषाण-साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया। कल्हणकृत **राजतरंगिणी** से प्रतीत होता है कि कनिष्क ने काश्मीर पर अधिकार कर वहाँ कनिष्कपुर नामक नगर (आधुनिक कांजीपुर—श्रीनगर के पास) की स्थापना की। तिब्बती साहित्य से पता चलता है कि कनिष्क एक सेना के साथ सोकड (साकेत, अयोध्या) तक चला आया एवं साकेत के राजा को उसने युद्ध में पराजित कर दिया। कुमारलताकृत **कल्पनामंडितिका** *(Kalpanamanditika)* के चीनी अनुवाद से पता चलता है कि कनिष्क ने पूर्वी भारत पर विजय प्राप्त की। अश्वघोष के चीनी जीवन वृतांत से भी पता लगता है कि कुषाणों ने मगध पर आक्रमण कर वहाँ से गौतम बुद्ध का भिक्षापात्र तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान एवं दार्शनिक अश्वघोष को पेशावर ले जाना चाहा। इस वृतांत में दुर्भाग्यवश आक्रमणकारी का नाम नहीं दिया गया है; परंतु संभवतः वह कनिष्क ही था। इसकी पुष्टि दूसरे ग्रंथ से भी होती है। **श्रीधर्मपिटकसंप्रदायनिदान** के अनुसार यू-ची राजा चियेन कि-नि-चा (Chen-Kia-ni-tcha—Devaputra Kanishka) अपनी सेना के साथ मगध तक आया, यहाँ के राजा को उसने युद्ध में पराजित किया तथा अश्वघोष, एक रसोइया एवं बुद्ध के भिक्षा-पात्र के साथ वह अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) वापस लौट गया। इन्हें वह युद्ध के हर्जाने के तौर पर अपने साथ ले गया। इन प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि कनिष्क ने मगध (पाटलिपुत्र) पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। इस क्षेत्र से प्राप्त कनिष्क के सिक्के भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

कनिष्क के अन्य भारतीय अभियानों की जानकारी साहित्यिक साधनों से प्राप्त नहीं होती है। कनिष्क की सबसे महत्त्वपूर्ण सैनिक सफलता मध्य एशिया में खोतान, काशगर और यारकंद की विजय थी। ईसा की प्रथम शताब्दी के आरंभ में चीन का मध्य एशिया के राज्यों से संपर्क टूट गया था; परंतु आगे चलकर महान चीनी सेनापति पान-चाओ (Pan-Chao) ने इन जगहों पर अधिकार कर चीनी साम्राज्य की सीमा विस्तृत कर ली। इससे कनिष्क काफी क्षुब्ध हुआ। चीनी सम्राट हो-ती (Ho-ti) और कनिष्क दोनों ही महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति थे और अपना प्रभाव मध्य एशिया में अधिक-से-अधिक बढ़ाना चाहते थे। कनिष्क ने चीन के सम्राट के पास अपनी समकक्षता प्रकट करते हुए एक राजदूत को भेजा तथा यह भी मांग की कि चीनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ कर दिया जाए। चीनी सेनापति ने इसे अपना एवं सम्राट का अपमान समझा तथा कनिष्क के राजदूत को कैद कर लिया। इस घटना की सूचना ने कनिष्क को क्रुद्ध कर दिया। उसने अपने सेनापति के अधीन एक विशाल सेना चीन के विरुद्ध भेजी, परंतु इस युद्ध में कनिष्क की सेना को हार का मुँह देखना पड़ा तथा उसे चीनी सम्राट को कर देना पड़ा। कनिष्क इस अपमान को बहुत दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सका। पान-चाउ की मृत्यु के पश्चात उसने पुनः चीन पर आक्रमण कर दिया। इस बार कनिष्क की विजय हुई। उसने काशगर, यारकंद एवं खोतान पर अपना आधिपत्य जमा लिया। कहा जाता है कि कनिष्क ने कुछ चीनियों को बंधक भी बना लिया तथा उन्हें अपने दरबार में रहने को बाध्य किया। इन

1. ".....There is no inscription of the [illegible] inclusive

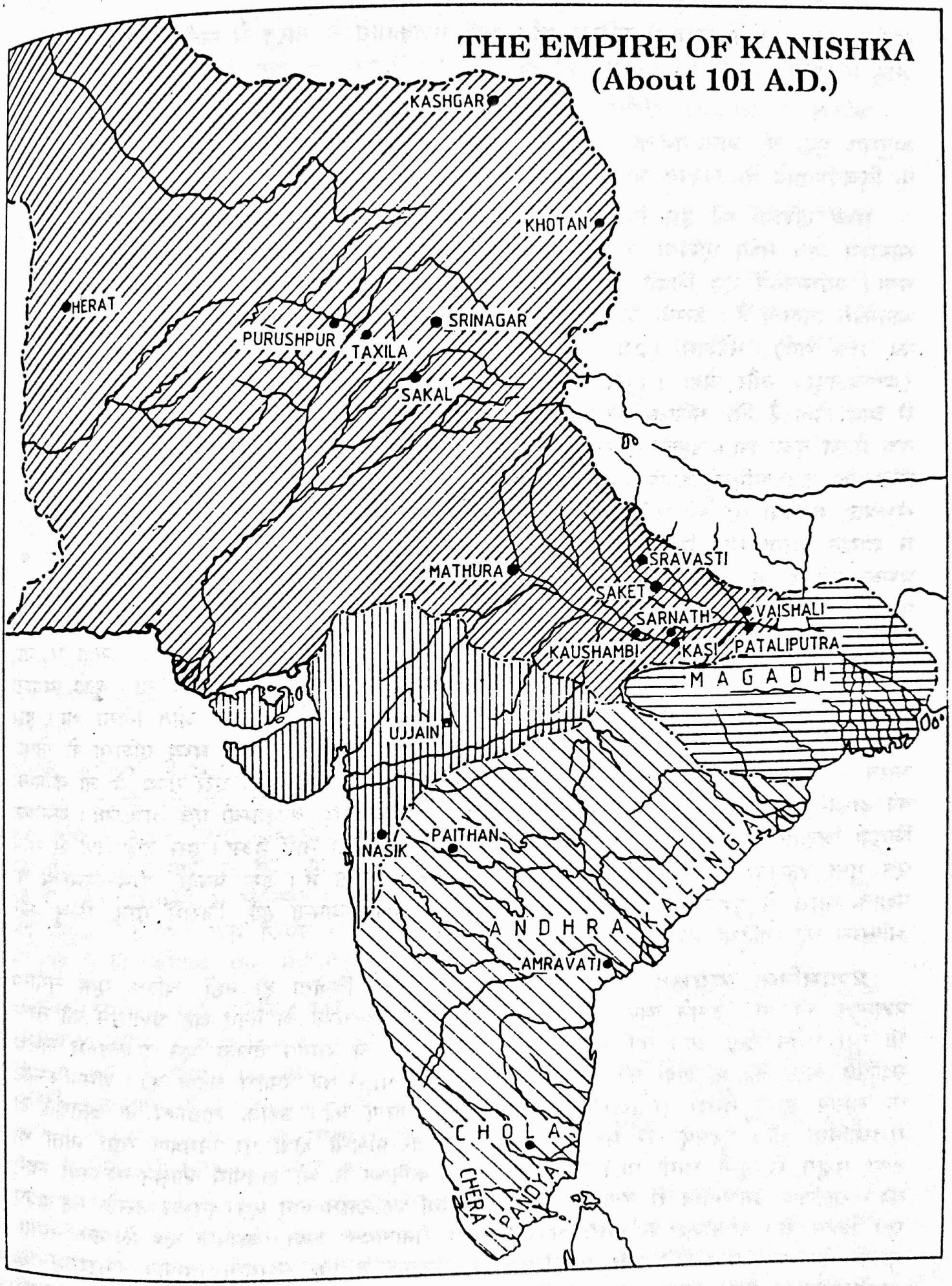

मानचित्र 2

बंधकों में दो चीनी राजकुमार भी थे। युवान च्वांग भी इस घटना का उल्लेख करता है।[1] युवान च्वांग यह भी कहता है कि जाड़े में जहाँ राजकुमार रखे जाते थे वह जगह चीन-भुक्ति

(China-bhukti) के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन्हीं राजकुमारों ने भारत में सर्वप्रथम नाशपाती तथा आड़ू से लोगों को परिचित कराया। इन लोगों ने बौद्ध विहारों एवं चैत्यों के लिए दान भी दिया।

कनिष्क ने संभवतः पार्थिया के राजा को भी युद्ध में पराजित किया। अनेक विद्वानों के अनुसार युद्ध की प्रामाणिकता संदेहपूर्ण है, परंतु दोनों के बीच संघर्ष होने एवं उसमें कनिष्क के विजयी होने के अस्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं।

मध्य एशिया की इस विजय ने कनिष्क के साम्राज्य की सीमा काफी बढ़ा दी। उसका साम्राज्य अब मध्य एशिया के अराल समुद्र (Aral Sea) से लेकर गंगा की घाटी तक फैल गया। अभिलेखों एवं सिक्कों के प्राप्ति स्थान से कनिष्क के साम्राज्य की सीमा के विषय में जानकारी मिलती है। उसके अभिलेख अग्रलिखित स्थानों से प्राप्त हुए हैं : पेशावर (राज्यकाल का 1ला वर्ष), कोशम (2रा वर्ष), सारनाथ (3रा), मथुरा (4था से 23वाँ), सुई-विहार (बहावलपुर) और जेद्दा (11वाँ वर्ष) तथा मनिक्याला (रावलपिंडी 18वाँ)। इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कनिष्क का साम्राज्य पूर्व में बनारस से लेकर दक्षिण-पश्चिम में बहावलपुर तक फैला हुआ था। उसके राज्य के अंतर्गत उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत तथा सिंध के क्षेत्र सम्मिलित थे। सांची अभिलेख (22वाँ वर्ष) से यह भी पता लगता है कि संभवतः मालवा पर भी कनिष्क का अधिकार था जहाँ वंशिष्क कनिष्क के प्रांतपति के रूप में शासन करता था। सिल्वां लेवी और प्रो० बी० एन० मुखर्जी का विचार है कि कनिष्क का प्रभुत्व दक्षिण भारत पर भी था; यद्यपि इसके लिए काफी स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पुरात्तात्विक खुदाइयों से भी कनिष्क के राज्य विस्तार की जानकारी मिलती है। बिहार में पाटलिपुत्र, बक्सर, चिरांद, वैशाली एवं अन्य जगहों से कनिष्क के सिक्के काफी मात्रा में पाए गए हैं। इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहार पर भी कनिष्क का अधिकार था। कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि कनिष्क ने बंगाल के कुछ हिस्सों को भी जीत लिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि कनिष्क का साम्राज्य काफी विशाल था। यह मध्य एशिया से लेकर भारत में बिहार तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य के अंतर्गत अनेक ऐसे राज्य थे जो कनिष्क की अधीनता स्वीकार करते हुए स्वतंत्र राज्य थे, जैसे सारनाथ, कौशाम्बी एवं अयोध्या। कनिष्क जितना विशाल साम्राज्य प्राचीन भारत में फिर कभी स्थापित नहीं हुआ। इस दृष्टिकोण से मौर्य एवं गुप्त शासक भी कनिष्क की बराबरी नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार, मौर्य-साम्राज्य के पश्चात भारत में पहली बार एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई, जिसमें गंगा, सिंधु और ऑक्सस की घाटियाँ सम्मिलित थीं।

प्रशासनिक व्यवस्था—कनिष्क सिर्फ एक महान विजेता ही नहीं, बल्कि एक सुयोग्य प्रशासक भी था। अपने विशाल साम्राज्य की सुचारु व्यवस्था के लिए वह प्रशासन की तरफ भी पूरा ध्यान देता था। कनिष्क ने चीनी सम्राट के ही समान देवत्व एवं राजत्व में संबंध स्थापित करने की कोशिश की तथा **देवपुत्र** (Devaputra) की उपाधि ग्रहण की। रोमन सम्राट के समान उसने **कैसर** (Casar) की उपाधि भी धारण की। उसके साम्राज्य के अंतर्गत दो राजधानियाँ थीं। पुरुषपुर से मध्य एशिया एवं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों पर नियंत्रण रखा जाता था तथा मथुरा से पूर्वी भागों पर। शकों की तरह कनिष्क ने भी क्षत्रपीय शासन-व्यवस्था लागू की। सारनाथ अभिलेख से पता लगता है कि वहाँ पर खरपल्लन एवं वनस्पर उसके महाक्षत्रप एवं क्षत्रप थे। साम्राज्य के उत्तरी भागों में हम सेनानायक लल, वेसपति एवं लियाक नामक क्षत्रपों के नाम पाते हैं। भी० ए० स्मिथ का विचार है कि संभवतः नहपान (महाराष्ट्र का क्षहरातवंशी) एवं चष्टन (उज्जयिनी का क्षत्रप) कनिष्क के सामंत थे। कनिष्क की शासन-व्यवस्था के विषय में अन्य जानकारी नहीं मिलती।

धार्मिक नीति—भारतीय इतिहास में कनिष्क एक महान विजेता एवं प्रशासक के रूप में ही विख्यात नहीं है, बल्कि उसकी प्रसिद्धि शाक्यमुनि के धर्म को प्रश्रय देने की वजह से भी है। मौर्य-सम्राट अशोक के पश्चात कनिष्क ही बौद्धधर्म का सबसे प्रबल समर्थक सिद्ध हुआ। बौद्ध साहित्य में उसका उल्लेख एक उत्साही बौद्ध के रूप में हुआ है। कहा जाता है कि बौद्धधर्म के संसर्ग में आने के पूर्व वह अशोक के ही समान क्रूर एवं अत्याचारी प्रवृत्ति का शासक था, परंतु पाटलिपुत्र की विजय के पश्चात वह अश्वघोष एवं मातृचेट जैसे विद्वानों के

संपर्क में आकर बौद्ध बन गया। उसके बौद्ध होने का प्रमाण उसके सिक्कों से मिलता है। उसके सिक्कों पर बुद्ध का चित्र अंकित है।

अशोक के ही समान कनिष्क ने भी बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक प्रयत्न किए। सी-यु-की *(Si-yu-ki)* नामक चीनी ग्रंथ से पता लगता है कि कनिष्क ने काश्मीर में (कुछ विद्वानों के अनुसार जालंधर में) बौद्धों की एक सभा बुलाई (चौथी बौद्ध संगीति)। यह सभा पार्श्व की सलाह पर बुलाई गई। इसका उद्देश्य विभिन्न बौद्ध विद्वानों में प्रचलित मतभेद दूर करना था। इसके अध्यक्ष वसुमित्र एवं उपाध्यक्ष अश्वघोष जैसे बौद्ध विद्वान थे। इसमें लगभग 500 विद्वानों ने हिस्सा लिया। सभा की कार्यवाही 6 महीने तक चलती रही। बौद्ध धर्म-ग्रंथों पर विस्तृत टीकाएँ लिखी गईं[1] तथा **महाविभाष** नामक बौद्ध ज्ञान-कोष तैयार किया गया।[2] इस परिषद का मुख्य कार्य बौद्धधर्म की महायान शाखा को मान्यता देना था। सभा की सारी कार्यवाही संस्कृत में हुई थी जिससे संस्कृत के विकास में मदद मिली। इस समय से महायान ही प्रमुख बौद्ध संप्रदाय बन गया।

मौर्य-सम्राट अशोक की तरह कनिष्क ने भी बौद्धधर्म (महायान) के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्य किए। उसने धर्म का प्रचार अपने विस्तृत साम्राज्य और आस-पास के क्षेत्रों में करवाया। उत्तरी एशिया में महायान बौद्धधर्म का प्रचार उसी के समय में हुआ। बौद्धधर्म के प्रचार के लिए विदेशों में धर्मप्रचारक भी भेजे गए। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप ही बौद्धधर्म का प्रचार इस समय चीन एवं मध्य एशिया में हो सका। कनिष्क ने अनेक बौद्ध विहारों, चैत्यों एवं स्तूपों का भी निर्माण करवाया। उसके समय का सबसे प्रसिद्ध स्तूप पुरुषपुर (पेशावर) में बना। कनिंघम के अनुसार यह शाहजी-की-ढेड़ी (Shahji-ki-Dheri) पर स्थित था। कनिष्क के समय में बुद्ध की सुंदर प्रतिमाएँ भी बनीं। इनका परिणाम यह हुआ कि अशोक की मृत्यु के बाद जो बौद्धधर्म पतन की तरफ अग्रसर हो रहा था, वह फिर से भारत का प्रधान धर्म बन गया।[3]

यद्यपि कनिष्क बौद्धधर्म को प्रश्रय देता था, तथापि वह धार्मिक दृष्टिकोण से एक उदार शासक था। उसके साम्राज्य में विभिन्न धर्मों के अनुयायी निवास करते थे। इन सबके साथ उसने धार्मिक निष्पक्षता तथा सहिष्णुता का व्यवहार किया। इसका प्रमाण हमें उसके सिक्कों से मिलता है। उसके सिक्कों पर बुद्ध के अतिरिक्त यूनानी, ईरानी एवं हिंदू देवताओं के चित्र भी मिलते हैं। इन देवताओं में हेराक्लीज (Herakles), सूर्य (Sun), शिव (Siva), अग्नि (Fire) इत्यादि प्रमुख हैं। कुछ ताम्र सिक्कों में उसे वेदी पर बलि चढ़ाते हुए भी दिखाया गया है। इससे स्पष्ट है कि कनिष्क एक धर्मसहिष्णु शासक था।

कला, साहित्य एवं व्यापार को प्रश्रय—कनिष्क ने कला एवं साहित्य के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। स्थापत्य एवं मूर्ति कला का इस समय काफी विकास हुआ। स्थापत्य के क्षेत्र में पुरुषपुर का स्तूप एवं मथुरा का नाग मंदिर एवं देवकुल कनिष्क के समय की बहुमूल्य उपलब्धियाँ हैं। महायान धर्म के प्रचार के चलते बुद्ध की प्रतिमाएँ काफी संख्या में बनने लगीं। गांधार-शैली एवं मथुरा शैली दोनों का ही इस समय काफी विकास हुआ। कनिष्क के सिक्के भी कला के अनूठे नमूने हैं।

इस समय संस्कृत साहित्य की भी प्रगति हुई। कनिष्क विद्वानों को समुचित आदर एवं प्रश्रय देता था। उसके दरबार में उस समय के प्रसिद्ध विद्वान रहते थे। इन लोगों ने महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। अश्वघोष ने संस्कृत में **बुद्धचरित** एवं **सौन्दरानन्द** नामक काव्यों की रचना की। संघरक्षक एवं माथ्र या मातृचेट जैसे विद्वान भी कनिष्क का प्रश्रय प्राप्त करते थे। प्रसिद्ध

आयुर्वेदशास्त्र का विद्वान चरक एवं प्रसिद्ध यूनानी इंजीनियर एगिसिलेयस (Agesilaus) को भी कनिष्क ने प्रोत्साहन दिया। संस्कृत भाषा का इस समय काफी विकास हुआ।

मध्य एशिया के साथ घनिष्ठ संपर्क होने की वजह से व्यापार-वाणिज्य के प्रसार एवं नगरों के विकास में भी मदद मिली। स्वयं कनिष्क ने सिरकप (तक्षशिला) एवं कनिष्कपुर की स्थापना करवाई। इसके चलते नागरी-सभ्यता के विकास में भी मदद मिली।

लगभग 23 वर्षों तक शासन करने के पश्चात 101 या 102 ई० में कनिष्क की मृत्यु हुई। अनुश्रुतियों के अनुसार उसके लगातार युद्धों से तंग आकर उसके मंत्रियों एवं संबंधियों ने निद्रावस्था में उसकी हत्या कर दी। इसमें कितनी सचाई है यह कहना कठिन है। निःसंदेह कनिष्क एक महान विजेता, कुशल प्रशासक, कला-कौशल, साहित्य एवं धर्म को प्रश्रय देनेवाला था। उसी के प्रयासों के फलस्वरूप बौद्धधर्म एक विश्व धर्म के रूप में परिणत हो गया।

2.10(c). कुषाणों का पतन *(Decline of The Kushanas)*

कनिष्क प्रथम कुषाणों का अंतिम महान सम्राट था जिसने मध्य एशिया से भारत तक के विस्तृत साम्राज्य पर राज्य किया। उसकी मृत्यु या हत्या ने कुषाण साम्राज्य को डाँवाडोल कर दिया। आपसी प्रतिद्वंद्विता, साम्राज्य के विभाजन एवं नई राजनीतिक शक्तियों के उदय ने कुषाणों की सत्ता भारत में समाप्त कर दी यद्यपि पश्चिमोत्तर सीमा पर कुषाणों के वंशज किदार कुषाण के रूप में शासन करते रहे। उनके राज्य के अवशेषों पर हिंदूशाही या ब्राह्मणशाही राजवंश की स्थापना हुई जो 11वीं शताब्दी तक, तुर्कों की भारत विजय के पूर्व, शासन करता रहा। कनिष्क के उत्तराधिकारी अक्षम निकले। फलतः वे विशाल साम्राज्य की एकता बनाए रखने में विफल हुए।

वशिष्क—कनिष्क प्रथम के बाद उसका उत्तराधिकारी वशिष्क हुआ। वह कनिष्क का पुत्र था। कनिष्क के शासनकाल में वह मालवा का प्रांतीय शासक था। कल्हण **राजतरंगिणी** में जुष्क नामक कुषाण शासक का उल्लेख करता है जिसने काश्मीर में जुष्कपुर (श्रीनगर के निकट जुकर) नगर बसाया। वशिष्क के दो अभिलेख 24 और 28वें राजवर्ष के मिले हैं। ये अभिलेख क्रमशः मथुरा और साँची से मिले हैं। इनसे स्पष्ट हो जाता है कि वशिष्क का अधिकार मथुरा और साँची पर था। इन अभिलेखों के आधार पर वशिष्क की तिथि 102-106 ई० मानी गई है। उसने सिर्फ चार वर्षों तक ही शासन किया। उसके समय की किसी महत्त्वपूर्ण घटना की जानकारी नहीं है।

हुविष्क—वशिष्क की मृत्यु के साथ ही साम्राज्य का विघटन होना आरंभ हुआ। प्राप्त अभिलेखों से आभास मिलता है कि वशिष्क के बाद कुषाण साम्राज्य का विभाजन कनिष्क और वशिष्क के उत्तराधिकारियों में हुआ। हुविष्क संभवतः कनिष्क प्रथम का पुत्र था तथा कनिष्क द्वितीय वशिष्क का पुत्र। कुछ विद्वानों का मानना है कि हुविष्क ने कुछ समय तक कनिष्क द्वितीय के साथ संयुक्त रूप से शासन किया तथा बाद में कनिष्क द्वितीय की मृत्यु के बाद सार्वभौम शासक बन बैठा। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि कनिष्क द्वितीय और हुविष्क ने साम्राज्य के पश्चिमी और पूर्वी भागों पर एक ही साथ शासन किया, लेकिन अधिक संभावना है कि वशिष्क के बाद कनिष्क द्वितीय पश्चिमी पंजाब में स्वतंत्र शासक बन गया। पूर्वी भाग में हुविष्क का शासन रहा। कनिष्क द्वितीय की मृत्यु के बाद हुविष्क ने पुनः साम्राज्य का एकीकरण किया।

कनिष्क के बाद हुविष्क ही कुषाणों का सबसे अधिक शक्तिशाली शासक हुआ। उसने 106-138 ई० तक शासन किया। उसके अभिलेख 28 से 60वें राजवर्ष तक के मिले हैं। इसी अवधि के दौरान 41वें राजवर्ष का (119 ई०) आरा अभिलेख (पेशावर) मिला है जिस पर कनिष्क द्वितीय का नाम मिलता है। हुविष्क के सिक्के भी बड़ी संख्या में पाए गए हैं। **राजतरंगिणी** के अनुसार हुविष्क ने काश्मीर में हुष्कपुर (बारामूला के निकट) नगर की स्थापना की। इससे स्पष्ट होता है कि काश्मीर पर कुषाणों का आधिपत्य बना रहा। वारदक अभिलेख से काबुल पर उसके अधिकार की पुष्टि होती है। उसके समय में कुषाणों का अधिकार काबुल से

मथुरा तक बना रहा। मथुरा से आगे पूर्व में कुषाणों के अभिलेख कनिष्क के बाद नहीं मिलते हैं। इससे अंदाज लगता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश कुषाणों के प्रत्यक्ष नियंत्रण में नहीं रहा। हुविष्क को सिंध में रुद्रदामन के हाथों संभवतः पराजित होना पड़ा। इसने कुषाणों की सत्ता सिंध में समाप्त कर दी।

कनिष्क के ही समान हुविष्क भी एक धार्मिक सहिष्णु प्रवृत्ति का शासक था। व्यक्तिगत तौर पर वह बौद्ध धर्म का अनुयायी प्रतीत होता है। मथुरा में उसने एक बौद्ध विहार का निर्माण भी करवाया तथापि उसके सिक्कों पर ईरानी, यूनानी और भारतीय देवी-देवताओं, जैसे, बुद्ध, शिव, हेराक्लीज इत्यादि के चित्र मिलते हैं। निःसंदेह कनिष्क के बाद व्याप्त अव्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित कर हुविष्क ने कुछ समय के लिए कुषाणों की शक्ति और प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना की।

वासुदेव प्रथम—हुविष्क के पश्चात सात वर्षों तक का कोई अभिलेख नहीं मिला है। अतः राजवर्ष 60-67 (138-145 ई०) के बीच कुषाणों की स्थिति क्या थी यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। हुविष्क के बाद वासुदेव प्रथम के अभिलेख मिलते हैं। ये 67-98 राजवर्ष अर्थात 145 से 176 ई० तक के हैं। इन अभिलेखों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यद्यपि हुविष्क के बाद वासुदेव प्रथम 138 ई० में शासक बन गया होगा, परंतु उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं थी। इसलिए इस अवधि में वह कोई अभिलेख नहीं खुदवा सका। इस समय पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्र में ससानियनों का उदय हो रहा था। पंजाब और गंगाघाटी में गणतंत्रीय राज्य एवं स्थानीय शासक अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। वासुदेव के अभिलेख और सिक्के मथुरा और उसके निकटवर्ती क्षेत्र से पाए गए हैं। तक्षशिला से वासुदेव नामक राजा के सिक्के बड़ी संख्या में मिले हैं, परंतु वे सिक्के संभवतः वासुदेव द्वितीय के हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वासुदेव प्रथम के समय तक कुषाण राज्य मथुरा और उसके इर्द-गिर्द सिमट कर रह गया था। शेष भागों पर ससानियनों, किदार-कुषाणों, गणतंत्रों एवं स्थानीय शासकों ने अधिकार कर लिया। वासुदेव प्रथम के साथ ही कनिष्क ग्रूप के शासकों की सत्ता समाप्तप्राय हो गई। वासुदेव के सिक्कों से ज्ञात होता है कि वह शैव मतावलंबी था। उसके सिक्कों पर शिव-नंदी का चित्र मिलता है तथापि उसके नाम से उसके वैष्णव होने का आभास मिलता है।

वासुदेव के पश्चात कुषाण वंश का तेजी से पतन हुआ। उसके बाद कनिष्क तृतीय और वासुदेव द्वितीय के सिक्के मिलते हैं। कनिष्क तृतीय का प्रभाव पंजाब से बैक्ट्रिया और सीस्तान तक बना रहा। वासुदेव द्वितीय के समय में पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्र में कनिष्क तृतीय के गर्वनरों ने अनेक छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली। वासुदेव चारों ओर से कठिनाइयों से घिर गया। पश्चिम में उसे ससानियन, उत्तर में हूण (Epthlites-White Huna) तथा अन्य क्षेत्रों में प्रांतीय अधिकारियों, पंजाब में गणतंत्रों के विरोध का सामना करना पड़ रहा था। इससे मुक्ति पाने के लिए वासुदेव द्वितीय ने 230 ई० में अपना राजदूत चीन भेजकर सहायता की मांग की, परंतु इसका कोई लाभ नहीं निकला। ससानी शासक अर्दशिर ने बैक्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। सिंधु नदी के पश्चिम सीथियनों या शकों ने तथा पंजाब में यौधेयों, कुणिंदों, मालवों इत्यादि ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली। वासुदेव द्वितीय के बाद शापुर ने पश्चिमोत्तर सीमा पर अधिकार कर लिया। पूर्व में भारशिव नागों ने अपनी सत्ता बढ़ा ली। इस प्रकार तीसरी शताब्दी के मध्य तक कुषाणों की सत्ता बिखड़ चुकी थी। यद्यपि कुषाणों ने गुप्तों के राजनीतिक उदय के पूर्व तक कुछ क्षेत्रों में अपना स्थानीय प्रभाव बनाए रखा, जैसे उड़ीसा के पुरी कुषाण, पश्चिमोत्तर क्षेत्र में किदार कुषाण तथापि तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक उत्तर-पूर्वी भारत में कुषाणों का प्रभाव समाप्त हो चुका था। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में किदार कुषाण लंबे समय तक राज्य करते रहे। उन्हीं के अवशेषों पर ब्राह्मणशाही या हिंदूशाही (शाहीवंश) का उदय हुआ। इस वंश की स्थापना 9वीं शताब्दी के अंत में हुई। अंतिम कुषाण राजा लगतुर्मान को गद्दी से हटा कर उसके ब्राह्मण मंत्री कल्लार या ललिय ने ब्राह्मणशाही वंश की स्थापना की।

कुषाणों के पतन के कारण—अयोग्य उत्तराधिकारी—कनिष्क प्रथम के पश्चात विशाल कुषाण साम्राज्य का पतन आरंभ हुआ। कुषाणों के पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी प्रतीत

होते हैं। सर्वप्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि कनिष्क के उत्तराधिकारी सुयोग्य नहीं थे। ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि कैसे कनिष्क की मृत्यु के कुछ वर्षों उपरांत ही कुषाण साम्राज्य का विभाजन हुआ। इस विभाजन से कुषाणों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा को गहरी ठेस पहुँची। हुविष्क के बाद जितने भी शासक हुए उनमें साम्राज्य की एकता को बनाए रखने की सामर्थ्य नहीं थी। कनिष्क के बाद मध्य एशिया और पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत की स्थिति तेजी से बदल रही थी। भारत के भीतरी भागों में भी नई शक्तियों का उदय हो रहा था। ऐसी स्थिति में दृढ़प्रतिज्ञ शासक ही साम्राज्य की एकता को बनाए रख सकता था, परंतु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका। वासुदेव प्रथम और उसके बाद के शासक इस संकट का सामना करने में विफल रहे और साम्राज्य का विघटन हुआ।

प्रशासनिक दुर्बलता—कुषाणों की प्रशासनिक व्यवस्था को भी पतन के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। कुषाणों ने जिस शासनतंत्र का विकास किया उसमें विकेंद्रीकरण के तत्त्व प्रबल थे। कुषाण प्रशासनिक व्यवस्था की तुलना एक ढीले-ढाले सामंती संघ से की जा सकती है। कुषाणों ने क्षत्रपीय व्यवस्था लागू कर साम्राज्य को विभिन्न प्रांतों में विभक्त कर उनपर शासन करने के लिए क्षत्रप, महाक्षत्रप नियुक्त किए। कालांतर में जब गद्दी पर कमजोर राजा आए उनके समय में इन प्रांतीय शासकों ने अपने अधिकार बढ़ा लिए और छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली। इससे साम्राज्य का विघटन हुआ। यद्यपि कुषाण साम्राज्य सैनिक शक्ति पर आधृत था, लेकिन कुषाण अभिलेखों से इस बात की जानकारी नहीं मिलती कि कुषाण शासकों ने केंद्रीय सेना के गठन पर बल दिया। सेना के लिए भी उन्हें संभवतः प्रांतीय गवर्नरों या अधीनस्थ शासकों पर आश्रित रहना पड़ता था। इससे भी उनकी सत्ता कमजोर हुई।

अर्थव्यवस्था की दुर्बलता—ऐसा प्रतीत होता है कि कनिष्क के बाद कुषाणों की आर्थिक स्थिति भी दुर्बल हुई। यद्यपि दान संबंधी अनेक कुषाण अभिलेख मिलते हैं, लेकिन किसी भी अभिलेख में यह उल्लिखित नहीं है कि कुषाणों ने आर्थिक विकास के लिए कोई कार्य किया हो। उनकी अर्थव्यवस्था का आधार उद्योग और पश्चिमी जगत के साथ व्यापारिक संबंध थे, परंतु कनिष्क के पश्चात, विशेषकर हुविष्क के बाद, जो राजनीतिक परिस्थिति उत्पन्न हुई उसमें उद्योग और व्यापार की अवनति स्वाभाविक थी। शकों द्वारा पश्चिमी भारत और उज्जयिनी पर अधिकार करने से सामुद्रिक व्यापार और मध्य एशियाई व्यापार प्रभावित हुआ। सबसे बड़ी समस्या पश्चिमोत्तर सीमा पर हुई। राजनीतिक उथल-पुथल ने इस क्षेत्र से मध्य एशिया, चीन और रोमन साम्राज्य के साथ के व्यापारिक संबंधों को अवश्य प्रभावित किया होगा। ऐसी स्थिति में संभव है कि कुषाणों को आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा हो।

नई शक्तियों का उदय—कुषाणों के पतन के लिए नई राजनीतिक शक्तियाँ भी उत्तरदायी थीं। उनकी कमजोरी का लाभ उठाकर दक्षिण-पूर्वी पंजाब में यौधेयों ने कुषाणों की सत्ता उखाड़ फेंकी। सतलज घाटी में कुणिंदों ने यौधेयों की सहायता से कुषाणों की सत्ता समाप्त कर दी। रावी और चेनाब के मध्य मद्रकों और राजस्थान में अर्जुनायनों ने कुषाणों की सत्ता को चुनौती दी। मालव गण ने भी कुषाणों को परेशान किया। मथुरा और पद्मावती में भारशिव नागों ने कुषाणों की सत्ता समाप्त कर दी। कौशांबी में माघवंशी शासकों का उदय हुआ। पश्चिमोत्तर सीमा पर ससानियनों ने कुषाणों का शासन समाप्त कर दिया। इस प्रकार तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक कुषाण शासन समाप्त हो गया तथापि कुषाणों के वंशज पश्चिमोत्तर सीमा के एक छोटे भाग पर राज्य करते रहे। इनका उल्लेख समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति में हुआ है (दैवपुत्रशाहीशहानुशाही)।

2.11. कुषाण-शासनतंत्र *(The Kushana Polity)*

कुषाण-काल में जो प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की गई, वह मौर्यकालीन व्यवस्था से भिन्न थी। इसमें मौर्ययुगीन केंद्रीकरण की कठोर प्रवृत्ति के स्थान पर सत्ता का विकेंद्रीकरण ही स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। कुषाणों की प्रशासनिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमारे पास पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है, फिर भी अभिलेखीय साक्ष्यों और सिक्कों के आधार पर प्रशासनिक व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है।

राजा की स्थिति—कुषाणों ने राजतंत्रीय व्यवस्था को अपनाया, जिसमें शासन का प्रधान राजा होता था। कुषाण-शासकों ने गौरव एवं आडंबरपूर्ण उपाधियाँ धारण कीं। वे अपने-आपको **महाराज, राजाधिराज, 'शाओनानोशाओ' (शाहानुशाही), महीश्वर, सर्वलोकेश्वर** जैसी गौरवपूर्ण उपाधियों से विभूषित करते थे। इन उपाधियों से यह प्रतीत होता है कि कुषाणों के अधीन छोटे-छोटे शासक थे, जो कुषाण-शासकों की सार्वभौमिकता स्वीकार करते थे। प्रो॰ रामशरण शर्मा के अनुसार, ये उपाधियाँ सामंती व्यवस्था की तरफ इंगित करती हैं। इनसे यह भी पता चलता है कि कुषाणों के अंतर्गत सत्ता का विकेंद्रीकरण हो चुका था। गौरवपूर्ण उपाधियाँ धारण करने के अतिरिक्त कुषाण-शासकों ने राजत्व के दैवी गुणों पर विशेष बल दिया। उनका ऐसा करना इसलिए आवश्यक था कि कुषाण विदेशी थे। उन्हें भारतीय जनता का समर्थन प्राप्त नहीं था। अतः, यह समर्थन प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने-आपको **देवपुत्र** के रूप में प्रतिष्ठित करना आरंभ किया। मृत राजा की पूजा करने की प्रथा चलाकर, 'देवकुल' की स्थापना कर उन्होंने अपने-आपको देवता के रूप में प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं, अपने दिव्य स्वरूप को प्रकट करने के लिए कुषाण-राजाओं ने अपने सिक्कों पर अपनी प्रतिमाओं को प्रभामंडल, बादलों या लपटों से विभूषित रूप में अंकित करवाया। इन कार्यों द्वारा उन्हें अपनी प्रजा का समर्थन प्राप्त करने में सुविधा हुई। कुषाण-शासक भी **धर्मशास्त्रों** में वर्णित व्यवस्था के अनुकूल ही शासन करते थे। वे प्रजावत्सल थे। कुषाण-शासकों और उनके सामंतों **(शाही)** के बीच कैसा संबंध था, इस बात को दिखाने का कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है; परंतु ये शाही राजा की सैनिक सेवा (सहायता) अवश्य ही करते थे।

क्षत्रपीय व्यवस्था—कुषाणों के प्रांतीय संगठन के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्रो॰ वैजनाथ पुरी के अनुसार, कुषाण-साम्राज्य पाँच या सात प्रांतों में विभक्त था। इनके अलावा भी साम्राज्य में अनेक अधीनस्थ क्षेत्र थे, जो कुषाणों की अधिसत्ता स्वीकार करते थे, परंतु उनके प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण से बाहर थे। ऐसी इकाइयों एवं प्रांतों पर क्षत्रप शासन करते थे। कुषाणों ने एक ही क्षेत्र में दो शासक बहाल करने की विचित्र प्रथा चलाई। कनिष्क के सारनाथ-अभिलेख से ज्ञात होता है कि वहाँ वनस्पर और खरपल्लन नामक दो क्षत्रप, एक ही साथ शासन करते थे। स्पष्टतः ऐसा एक-दूसरे के कार्यों पर नियंत्रण रखने के लिए किया गया था; परंतु बाद में खरपल्लन को महाक्षत्रप बना दिया गया और उसके अधीन वनस्पर को रखा गया। इन क्षत्रपों की बहाली दो तरह से होती थी। कभी-कभी विजित शासकों या सरदारों को क्षत्रप के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जाता था, तो कभी उन्हें प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त भी किया जाता था। साधारणतया राजपरिवार के सदस्यों को ही इन पदों पर बहाल किया जाता था। क्षत्रप सैनिक और नागरिक दोनों ही कार्य करते थे।

पदाधिकारी—अभिलेखों में क्षत्रपों और महाक्षत्रपों के अतिरिक्त दंडनायक और महादंडनायक नामक अधिकारियों का उल्लेख मिलता है। क्षत्रप इन्हीं की सहायता से शासन करते थे। ये अर्ध-सैनिक अधिकारी थे, जिनके जिम्मे विजित प्रदेशों में प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने का कार्य सौंपा गया था। इनसे सैनिक-कार्य भी लिए जाते थे।

सेना एवं राजस्व—कुषाण-अभिलेखों से सैनिक-संगठन या राजस्व-व्यवस्था के विषय में पूरी जानकारी नहीं मिलती। दंडनायक और महादंडनायक सैनिक अधिकारी के भी कार्य करते थे। कुषाणों की सेना में घोड़ों का महत्त्व बहुत अधिक था। इसी प्रकार, इस युग में धनुर्धरों का भी महत्त्व बढ़ गया; परंतु सेना का संगठन, उसका विवरण या उसकी संख्या निश्चित करना कठिन है। यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि कुषाणों के पास एक विशाल और कुशल सेना अवश्य रही होगी, जिसके बल पर वे इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित कर सके। कुषाणों की राजस्व-व्यवस्था की निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है और न ही यह प्रमाणित करने का कोई अभिलेखीय प्रमाण है कि कुषाणों ने भी सातवाहनों की तरह भूमिदान किए।

प्रशासनिक इकाइयाँ—समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में कुषाणों की प्रशासनिक इकाइयों के रूप में **विषय** तथा **भुक्ति** का उल्लेख किया गया है, लेकिन कुषाणकालीन अभिलेखों में इनका उल्लेख नहीं मिलता। नगर-प्रशासन में संभवतः **श्रेणी** और **निगम** महत्त्वपूर्ण भूमिका

निबाहते थे। ग्राम सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई थी, जिसका प्रधान **ग्रामिक** होता था। मथुरा से प्राप्त वासुदेव के एक अभिलेख में इसका उल्लेख मिलता है। उसका मुख्य काम राजस्व की वसूली था। **पद्मपाल** गाँव की सामूहिक परती (ऊसर) जमीन की देखभाल करता था।

इस प्रकार, कुषाणों ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में कुछ नए तत्त्वों का समावेश किया। राजा के दैवी गुणों पर इतना अधिक बल पहले कभी नहीं दिया गया था। द्वैध शासन की प्रणाली भी इसी समय विकसित हुई। प्रो० रामशरण शर्मा के अनुसार, "सबसे महत्त्व की बात तो यह जान पड़ती है कि कुषाण-राजनीतिक ढाँचे की मुख्य विशेषता, अर्थात श्रेणीबद्ध सामंती व्यवस्था, को समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य-संगठन के एक स्तंभ के रूप में अपना लिया।"

2.12. कुषाणों की देनें *(Contributions of the Kushanas)*

राजनीतिक देन—भारत में कुषाण-राज्य की स्थापना ने भारतीय इतिहास एवं संस्कृति को गहरे रूप से प्रभावित किया। राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों ही क्षेत्रों में कुषाणों ने अपनी अमिट छाप छोड़ी। मौर्य-साम्राज्य के पतन के पश्चात कुषाणों ने फिर से एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर समस्त उत्तरी भारत को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधा। साम्राज्य की स्थापना के साथ ही उन्होंने प्रशासकीय व्यवस्था भी कायम की। सामंती व्यवस्था के आधार पर ही वे इस विशाल साम्राज्य को बिना विशेष परिश्रम के अपने नियंत्रण में रख सके। उन्होंने राजा के पद एवं गौरव को अत्यंत ऊँचा बना दिया। देवपुत्र की उपाधि धारण कर तथा देवकुलों का निर्माण कर कुषाणों ने भारत में राजत्व के दैवी सिद्धांत को प्रभावशाली बना दिया। बाद में इनका विकास गुप्त-सम्राटों ने भी किया। प्रशासन के क्षेत्र में क्षत्रपीय व्यवस्था, द्वैध शासन की परंपरा भी प्रमुख बन गई।

सांस्कृतिक देन—लंबे समय तक भारत में रहने के कारण कुषाणों ने भारतीय सभ्यता को अपना लिया। फलतः, उन्हें अन्य विदेशियों की ही तरह 'द्वितीय श्रेणी के क्षत्रिय' के रूप में भारतीय समाज में समाविष्ट कर लिया गया। भारतीयों ने कुषाणों की वेश-भूषा अपना ली। कुषाणों से उन्होंने घुड़सवारी, लगाम, जीन, पगड़ी, कुरती, पतलून, लंबे कोट, शिरस्त्राण, बूट आदि का व्यवहार सीखा। कुषाणों ने भारतीय धर्म को भी अपना लिया। कुषाण शासकों के सिक्कों पर ईरानी, यूनानी देवी-देवताओं के अतिरिक्त भारतीय देवी-देवताओं, मुख्यतः बुद्ध और शिव के चित्रण मिलते हैं। कनिष्क, हुविष्क बौद्धधर्म तथा विम कदफिसस और वासुदेव प्रथम शैव मत से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं तथापि सभी कुषाण शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई। कनिष्क ने बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक प्रयास किए। उसके प्रयासों के परिणामस्वरूप मध्य एशिया में महायान-बौद्ध शाखा का प्रचार हुआ। कुषाणों के प्रभाव से गांधार और मथुरा-कला शैलियाँ भी विकसित हुईं। इन शैलियों में बुद्ध और महावीर की सुंदर मूर्तियाँ बनाई गईं। कुषाणों ने अनेक स्तूप एवं चैत्य, मंदिर एवं देवकुल भी बनवाए। इनमें प्रसिद्ध है कनिष्क द्वारा पेशावर में निर्मित स्तूप एवं मथुरा का देवकुल। संस्कृत भाषा और साहित्य भी कुषाणों के प्रयासों से विकसित हुई।

आर्थिक देनें—कुषाण भारत की आर्थिक प्रगति में भी सहायक सिद्ध हुए। उनके विशाल साम्राज्य से ही होकर उस समय के दो प्रमुख व्यापारिक मार्ग—उत्तरापथ और रेशम-मार्ग गुजरते थे। इन मार्गों की सुरक्षा और शांति-व्यवस्था ने व्यापार-वाणिज्य को प्रभावित किया। फलतः, भारत का व्यापारिक संबंध मध्य एशिया एवं भूमध्यसागरीय संसार से बढ़ा। रोम के साथ व्यापारिक संबंध भारत के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ। रोम से प्रचुर मात्रा में सोना भारत आने लगा। कुषाणों के अधीन उद्योग एवं शिल्पों का भी विकास हुआ। मथुरा से प्राप्त कुषाणकालीन अभिलेखों में अनेकों शिल्पियों का उल्लेख मिलता है, जैसे, मणिकार, सुवर्णकार, लोहार, गंधिक इत्यादि। वाणिज्य-व्यापार के विकास ने मौद्रिक अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया। कुषाणों ने बड़ी संख्या में सोने और ताँबे के सिक्के ढलवाए। व्यापार-वाणिज्य के विकास ने अनेक व्यापारिक एवं औद्योगिक नगरों को उन्नत अवस्था में ला दिया। पुराने नगर इस समय पहले की अपेक्षा ज्यादा समृद्ध बन गए। मध्य एशिया से गंगाघाटी तक अनेक नए

नगरों का भी अभ्युदय हुआ। इस समय के प्रमुख नगरों में तक्षशिला (सिरसुख), पुरुषपुर, मथुरा, श्रावस्ती, कौशांबी, वाराणसी, पाटलिपुत्र, वैशाली इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। इन जगहों से कुषाणकालीन भवनों के अवशेष और अन्य सामान मिले हैं। वस्तुतः, कुषाणकाल में नगरों की जितनी अधिक उन्नति हुई, उतनी न तो कुषाणों के पहले कभी हुई थी और न भारत में मुस्लिम-शासन की स्थापना के पूर्व ही। इन नगरों ने भारत की समृद्धि को बढ़ाया। इसलिए, प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० रामशरण शर्मा कुषाणकाल को ही भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग मानना अधिक उपयुक्त मानते हैं।